विजयादशमी एवं संभावना पर्व का संदेश

(11 नवम्बर 1999)

आत्मस्वरूप,
नवरात्रि में नियम-विधि पूर्वक
आपने व्रतकर भगवती दुर्गा विंध्यवासिनी की पूजार्चा की
तथा विजयादशमी के पावन पर्व पर मुझे आमंत्रित कर
अपने भक्ति-भाव से मुझे प्रसन्न तथा संतुष्ट किया
उसके लिये मैं साभार आपको अपने पुनीत आशीर्वचनों से
समादृत करता हूँ।
शिवा-शिव समूह मेरा चिन्मय विग्रह है
तथा इसके प्रति समर्पण
इसके विकास के लिये संकल्प-भाव
गुरु के स्थूल विग्रह का भी सम्मान है;
अन्यथा अपने स्थूल विग्रह से आपके लिये
मैं कुछ भी नहीं कर सकता।
यह स्थूल विग्रह सचराचर जीवों के शरीर की तरह
दु:ख-सुख, रोगारोग्य, त्रिविधतत्व से संक्रमित
विभिन्न समस्याओं से संघर्ष करता हुआ
एक दिन अपनी यात्रा पूरी कर
पंच महाभूतों में विलीन हो जायेगा
फिर, मुझसे किसी का कोई संपर्क नहीं हो सकेगा
तब जो भी संपर्क होगा, जो भी वरदान मिलेगा
या जो भी मिलेगा, वह मेरी समाधि, मेरी वेदी से ही मिलेगा
जिसपर कोई विग्रह नहीं होगा।
जहाँ मेरे लोग, मेरे शिष्य एकत्र होकर जो भी स्थान मुझे देंगे
वह स्थान मेरी दिव्यता एवं पवित्रता से
शक्ति-पुंज बन जायेगा और सर्वसाधारण के हित में होगा
मेरे संपर्क हेतु जो भी आयेंगे
उनसे मेरा संपर्क, मेरा सानिध्य बन पायेगा,
किसी भी सद्गुरु के द्वारा जो संस्था, जो संगठन
जो अखाड़ा, जो सम्प्रदाय निर्मित होता है
वह उसका चिन्मय विग्रह होता है
वह अनादि एवं अनन्त है, वह द्वैताद्वैत विवर्जित है
संसार के सभी गुरुओं को
इसकी आवश्यकता प्रतीत होती रही है
चाहे-वे दत्तात्रेय जी हों, कीनाराम जी हों, गोरखनाथ जी हों
तीर्थंकर महावीर हों, महात्मा बुद्ध हों, हजरत मुहम्मद हों

या फिर कोई भी क्यों न हों
कबीर, शंकराचार्य, रामानुज, रामानंद जो भी हों
उन्हें अपनी चैतन्य शक्ति को संजोने के लिये
अपने ज्ञानामृत के संग्रह एवं आस्वादन हेतु
अपने संदेश की ज्योति से मानवता को
चिरकाल-तक आलोकित एवं मार्ग दर्शन हेतु
दीक्षित एवं समर्पित शिष्यों के समूह के
निर्माण की आवश्यकता हुई है अन्यथा
आज भगवान बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य
रामानंद जी प्रभृत मानवता के दिव्य ज्योति स्तंभों का
हमें पता ही नहीं चलता, वह ज्योति तिरोहित हो जाती
और इसीलिये
मैंने भी अपने सद्शिष्यों को लेकर,
एक समूह बना लिया
और अपनी दिव्य एवं पवित्र चिन्मय विग्रह को
स्थापित कर दिया शिवा-शिव समूह में
आप मुझे अपना मार्ग गुरु मानते हैं
यह आपकी महानता है और आप मुझे आदर देते हैं
अपनी भक्ति से मुझे भाव विभोर बना देते हैं
यह मुझ पर आपका ऋण सदा बना रहेगा
और यथाशक्ति मैं अपनी पराम्बा विंध्यवासिनी से
आपके कल्याण की सदा सर्वदा प्रार्थना करता ही रहूँगा।
यह जो योगिनी कौल तथा श्री नाथजी के
उच्चतम आदर्शों को लेकर
आदिगुरु भगवान दत्तात्रेय जी के सार सिद्धान्तों को लेकर
आनेवाले युगों में जो सर्वसुलभ आध्यात्म होगा
सर्वस्वीकृत धर्म होगा
सर्वश्रेष्ठ आचरण होगा
गिरनारी शैव परम्परा में शाक्त सिद्धान्तों का
अनूठा हीरक रत्न हमारा शिवाशिव समूह है
जिसका परिवर्द्धन, पल्लवन तथा अभिवर्द्धन
आपके हाथों में सौंपकर निश्चिन्त हो गया हूँ।
चिरस्मरणीय, मेरे परमात्मन पूज्यपाद श्री गुरु महाराज को
उनके मानवीय एवं आध्यात्मिक संदेशों को
हर मानव, हर भू-भाग तक पहुँचाने का दायित्व
मैं अपने समूह को सौंपता हूँ।
मुझे पूर्ण विश्वास है
जूना अखाड़े से जो पौधा मैंने
विंध्यवासिनी के चरणों में, विंध्यक्षेत्र में लगाया है
उसे आप पुष्पित, पल्लवित एवं सुवासित करने में
किसी प्रकार की न्यूनता नहीं रहने देंगे।
आप इस नन्हे बिरवे को गगनचुम्बी वृक्ष के
रूप में फलने-फूलने का अवसर देंगे।
इस शिवा-शिव समूह को
आप जातिवाद, कुलशील के मिथ्या अभिमान, परम्परावाद
संकीर्ण एवं दूषित मनोभावों की राजनीति एवं कूटनीति का
अखाड़ा नहीं बनने देंगे
तथा इसकी दिव्यता एवं पवित्रता को सुरक्षित रखेंगे।
इस द्वैताद्वैत विवर्जित पंथ का पोषण
आप भेदाभेद विवर्जित ज्ञानी बनकर करेंगे।
हमारे पंथ में
गुरु की आज्ञा एवं उपदेश के प्रति
संपूर्ण श्रद्धाभाव रखना ही समर्पण है
गुरुवाक्य के प्रति उपेक्षाभाव
उसका आलोचन-प्रत्यालोचन
(आध्यात्मिक जिज्ञासावश पृच्छा करने की मनाही नहीं है)

व्यर्थ के जागतिक, प्रापंचिक प्रश्न
गुरु के प्रति द्वेष और कुटिलभाव रखना
गुरु की उपेक्षा है तथा अतिनिंदा रूपी महापाप है।
गुरु को संपूर्ण रूप से स्वीकार करना होता है
तभी उसकी कोई उपयोगिता संभव है
अन्यथा व्यर्थ है गुरु-दर्शन भी
संपूर्ण समर्पण के बिना गुरु तत्व की अनुभूति नहीं
दीक्षा लेने के पूर्व ही
पग-पग पर गुरु की परीक्षा होनी चाहिये।
दीक्षा के उपरान्त
गुरु को समग्ररूप से ग्रहण करना होता है
क्योंकि आपका आकर्षण बौद्धिक तल पर घटता है
और आप दीक्षा ले लेते हैं
तो वैसी दीक्षा की कोई उपयोगिता नहीं
- बिल्कुल अधूरी दीक्षा
कोई स्वार्थ, कोई शर्त, कोई लिप्सा यदि हो तो
दीक्षा व्यर्थ हो जाती है
क्योंकि वैसे लोग समर्पण कर नहीं पाते
सद्शिष्य होने की उनमें पात्रता नहीं होती
परन्तु यदि कोई इतना खो जाये गुरु के चिन्तन में,
विग्रह में, उसके भाव में
कि उसके साथ हर क्षण भावोत्कर्ष में ले जाय
उसके प्रेम में इतना डूब जायें आप
सबकुछ उसका अपना-अपना लगे
परम शांति को उपलब्ध हो जायें
उसकी हर चेष्टा परम प्रिय लगने लगे
आनंद और शांति की परम अनुभूति हो
जब किसी व्यक्ति के प्रति इतना आकर्षण हो जाय
दिव्य और पवित्र
कि वह बौद्धिक विलास की वस्तु न होकर
प्रेमास्पद बन जाय, हृदयांगन में उतर जाय
मस्तिष्क, बौद्धिकतल के झरोखों से
तो उसे ही अपना गुरु बना लें
वही आपके लिए सद्गुरु हो सकता है
अन्यथा दीक्षा भी एक बंधन है
नहीं टूटने वाला बंधन निर्मित न करें।
दीक्षा के बाद
कुछ भी समर्पित करने लायक शेष न रहे
जो कुछ था समर्पित हो जाय तभी दीक्षा पूर्ण होती है
तभी आध्यात्म के दुर्गम पथ के
पथिक की पात्रता आपमें आ सकती है।
और आपका उद्देश्य या भाव हो
तो उसे विसर्जित कर दें
अन्यथा समूह आपके लिये उपयोगी न हो सकेगा
इसे छोड़ देना ही श्रेयस्कर है
इसके लिये किसी आवेदन की आवश्यकता नहीं है
बस चुपचाप छोड़ दें
मौन समूह से नाता तोड़ दें
फिर कभी याद भी न करें-मुद्रामाला सौंप दें।
जो शिष्य मुझे सबकुछ मानता हो
मगर शिवा-शिव समूह के प्रति उपेक्षाभाव रखता हो
वह धीरे-धीरे गुरु के चिन्मय विग्रह से दूर होता जाता है।
और एक दिन स्वत: स्थूल विग्रह की उसे याद तक नहीं रहेगी।
दीक्षा-एक ईश्वरीय अनुकम्पा है
यह एक घटना है-संयोग से घटित होती है

बस घट जाती है
जो दीक्षा लेने की सोचकर आते हैं
वे बिना लिये लौट जाते हैं
जिन्होंने विचार तक नहीं किया
वे दीक्षित होकर हमेशा-हमेशा के लिये गुरु से अभिन्न हो जाते हैं।
एक दिव्य और परमात्म घटना है
इसे न तो कोई देता है और न कोई लेता है
बस घट जाती है, परमात्मा का अवतरण चुपचाप हो जाता है
और उस अवतरण का गुरुमात्र साक्षी है, दृष्टा है-बस
आपको संसार का पता है, परमात्मा का नहीं।
गुरु को दोनों का पता होता है
वह दृष्टा है, साक्षी है इस घटना का
क्योंकि गुरु परम्परा से होती हुई
वह चिन्मय शक्ति आपके गुरु में एकत्र होती है
गुरु दिव्य चेतना का पुंजीभूत रुप ही तो है
और आप में आपकी पात्रता के अनुरूप
वह दिव्यशक्ति उतरती है जिसे शक्तिपात कहते हैं
और उसी का साक्षी बन जाते हैं गुरु
आपको गुरु दिखाई देते हैं
किन्तु गुरु को परमात्मा भी दिखता है।
इसीलिये गुरु के प्रति शिष्य का अनुग्रह भाव
जो भी सेवा सत्कार आप करते हैं यह उसी अनुग्रह भाव का प्रतीक है।
गुरु को वह भी स्वीकार्य नहीं,
कोई आवश्यकता उसे नहीं है आपकी सेवा भक्ति की।
वह स्वयं में पूर्ण है परमात्मा की तरह
क्योंकि उसे परमात्मा का अनुभव है
जिसे परमात्मा का अनुभव हो जाय
उसे और किसी से कोई संबंध नहीं
समर्पण आपका दायित्व है
श्रद्धाभक्ति आपका धर्म है
उससे मेरा कुछ भी लेना-देना नहीं
फिर मुझ से पूछकर अलग हो जाने का कोई तुक नहीं।
जो मेरे प्रति प्रेमाप्लावित न हों
जिन्हें अपने समर्पण में कोई बाधा मालूम हो
जिनके समर्पण में कोई अनुबंध या शर्त हो
वे बस चुपचाप अपने जगत में वापस जाने के लिये स्वतंत्र हैं
फिर जो जी में आये, जैसा जीवन चाहें वैसा जियें।
किसी भी शिष्य के पलायन से गुरु सदा निर्लिप्त रहता है
यह तो शिष्य को सोचना है क्योंकि वह सूत्र
जिससे परमात्मा की अनुभूति संभव थी, खो जाता है।
गुरु साक्षी, शिष्य ग्रहण करने वाला और परमात्मा देने वाला
त्रयात्मक समर्पण यदि संभव नहीं तो दीक्षा आपके लिये
कुछ भी करने में समर्थ नहीं
कोई रूपान्तरण घटित नहीं हो सकता।
गुरु के प्रति, समूह के प्रति और परमात्मा के प्रति
इन तीनों तल पर जब तक समर्पण नहीं होता
शिष्य अधूरा रह जाता है
श्रद्धा यदि पूरी न हो तो आंतरिक संबंध नहीं बन सकते
गुरु-शिष्य का संबंध कोई जागतिक नहीं है
गुरु से आपका कोई संबंध नहीं, फिर भी
उससे सभी तरह के आपके संबंध जुड़ जाते हैं
बड़ा ही जटिल संबंध है-कुछ भी नहीं, फिर भी सबकुछ।
पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण से भी पूर्ण
इससे कम में कुछ भी नहीं होने वाला है
हृदय के तार जुड़ नहीं पाते,

यदि श्रद्धा में किंचित् भी न्यूनता हो
क्योंकि ऐसी श्रद्धा अहंकार की उपज है
वह श्रद्धा असीम नहीं, सीमित है
नपीतुली, छद्म एवं चातुर्य पूर्ण।
बस, परिधि पर आपका मेरा कोई संबंध बन जाता है
देखने में गुरु-शिष्य का संबंध लगता है
मगर वैसा है नहीं,
परिधि पर बने संबंध टूट जाते हैं
अन्तर का संबंध बन नहीं पाता
केन्द्र पर संबंध बने तो वह अटूट बन जाता है
बिल्कुल शाश्वत और निश्चल सुदृढ़
और बिना इस तरह का संबंध बने
परमात्मा की अनुभूति, परमात्मा का दर्शन असंभव है।
यह जगत का नियम है कि बिना पात्रता के कुछ भी नहीं मिलता
यह ईश्वरीय नियम है कि पात्रता से अधिक
किसी को कुछ नहीं मिलता
यदि नहीं मिलता तो आप अपनी पात्रता का विश्लेषण करें
कहीं कुछ न्यूनता है जिसके पूरा होते ही
आपका प्राप्तव्य आपको प्राप्त हो जायेगा।
गुरु में दोष-दर्शन करने से अच्छा है
अपना दोष देखें और उसे दूर कर पात्रता अर्जित करें।
आप वैसे ही हैं
जो परिश्रम के बिना
बिना साधना के
सबकुछ पा जाना चाहते हैं
मन हमारा आकांक्षा बहुत के लिये करता है
श्रम बहुत कम के लिये करता है
यह अन्तर आत्मघाती है
अपने अहंकार को नष्ट करें
और गुरु के प्रति पूर्णतिपूर्ण श्रद्धा रखकर
संपूर्ण समर्पण-भाव रखकर करें।
बुद्धि और अहंकार से उपजी श्रद्धा के प्रति जगें
अन्यथा आपका और मेरा मिलना केन्द्र पर नहीं होगा
परिधि पर निर्मित संबंध
न तो उपयोगी होते हैं और न निभ ही पाते हैं
आप में उस ऊर्जा का अभाव है
उस ऊर्जा की मात्रा न्यून है
जो आपको केन्द्र में स्थापित कर सके
गुरु के प्रति कोई शाश्वत संबंध घटित हो सके
केन्द्रीभूत हो जाये तभी कोई यात्रा संभव है
तभी कोई समीकरण बन सकता है
गुरु सूर्य बन जाय
ग्रहों की तरह उनकी परिक्रमा करने लगें
आपकी चेतना गुरु के चतुर्दिक घूमने लगे
तभी वह आपके अस्तित्व का केन्द्र बन सकता है।
व्यवसायिक दृष्टिकोण निर्मित न करें
गुरु पूर्ण समर्पण चाहता है-थोड़ा भी कम नहीं
क्योंकि वह आपको अपनी पूर्ण संपूर्णता में अपनाता है
आत्मा से आत्मा का संबंध निर्मित होना चाहिये
शरीरिक तल पर नहीं, बौद्धिक तल पर नहीं
बस आत्मिक तल पर आप इस मिलन को यदि स्वीकार करते हैं।
तभी गुरु-शिष्य का संबंध निर्मित होता है
बस आप गुरु में रम जाते हैं, तदाकार हो जाते हैं।
गुरु में विसर्जित होना ही शिष्य की पूर्णता है
शरीर, हृदय-बुद्धि, मन के पर है वह केन्द्र
जहाँ अस्तित्व है

और वहाँ पहुंचे बिना गुरु-दर्शन दुःस्साध्य है
बिना गुरु-दर्शन के कोई भी प्रगाढ़ संबंध निर्मित नहीं हो सकता।
केन्द्र में जाने का
गुरु के सम्यक् दर्शन का मार्ग है
जप, ध्यान और चक्रार्चन
जो मार्ग मिला है उसे सम्यक् रूप से समझें
उसके अनुसार अपना आचरण बनायें
'शील-सूत्र' के आदर्शों को आत्मसात् करें
शीघ्रातिशीघ्र तांत्रिक-मांत्रिक बनकर
चमत्कार-प्रदर्शन की आकांक्षा न पालें
पाखंड आडंबर से चिपके रहकर,
आध्यात्म और धर्म का विकास नहीं किया जा सकता।
गुरु का स्थान सर्वोपरि है
गुरु-शिष्य के संबंधों में किसी प्रकार की
शिथिलता या व्यतिक्रम न आनें दें।
विद्रोह और विरोध-दोनों ही गुरु के प्रति अपराध हैं
गुरु के आचरण की समालोचना से
आपका कुछ भी हित होने वाला नहीं है
इससे आपकी अश्रद्धा और अपात्रता का ही संकेत मिलेगा
गुरु वचनों के प्रति आदर एवं श्रद्धा रखकर
उसके अनुसार रूपान्तरण करें
कुलार्णव तथा अन्यान्यतंत्र ग्रंथों का अनुशीलन कर
अपने जीवन में उसे रूपायित करें
और सद् शिष्य बनकर शिवा-शिव समूह के प्रति
अपनी श्रद्धा, अपनी भक्ति और अपना समर्पणभाव
दिव्यातिदिव्य दृष्टिकोण रखते हुए
दृढ़ता से जमाये रखें
क्योंकि आपके श्री गुरु का यह चिन्मय विग्रह है
और इसे सजा-संवारकर
इसके कार्यक्रमों में अपना तन-मन-धन अर्पित कर
इसे इतना सफल एवं सशक्त बनायें
कि समस्त विश्व के आध्यात्मिक शिखर पर
इसकी प्रभा से समस्त विश्व आलोकित हो जाय।
'शील सूत्र', 'कुलाष्टक' का सतत् अध्ययन
अनुशीलन करते रहें,
उसे जीवन में उतारें।
ध्यान-जप का पाथेय लेकर
आध्यात्म पथ पर अपनी यात्रा अनवरत बनाये रखें,
इन्हीं शुभकामनाओं एवं आशीर्वचनों के साथ

अवधूत कृपानन्दनाथ
मार्ग गुरु
शिवा-शिव समूह
राँची- 11.11.1999

अनामा प्रकाशन

स्थापना पर्व का
संदेश
(वसन्त पंचमी,
10 फरवरी 2000)

आत्मस्वरूप,
आज से बीस वर्ष पूर्व
जिन भावनाओं से प्रेरित होकर
हमने विश्वबंधुत्व, विश्व नागरिकता
सतत् कर्मशील रहते हुए एक आदर्श समाज के निर्माण का
उद्देश्य लेकर तथा साधना के क्षेत्र में सर्वसुलभ आध्यात्म के
प्रचार-प्रसार का संकल्प किया था-
तथा शिवा-शिव समूह के नाम से
कौलमार्गीय साधना-पद्धति को जन-जन तक पहुँचाने की
अभीप्सा लेकर मात्र तीन-चार साधकों के साथ
एक साधक समाज का गठन किया था-
और अब जब लगभग सहस्त्राधिक लोग इसके सपने को साकार
करने के लिये एक जुट हो गये हैं
तब उन सपनों को, संकल्पों की अलख जगाने का समय आ गया है।
आप अपना प्रतिवर्ष की भांति बीसवां स्थापना पर्व मना रहे हैं
और इस मांगलिक अवसर पर आपने मुझे आमंत्रित कर
मेरे निर्देशन में श्री गुरू महाराज की इच्छानुरूप
समाज की रचना करना चाहते रहे हैं
जहां प्रेम, भक्ति और करुणा के संगम-स्नान से
कृत-संकल्प होकर एक विश्व-जनीन सर्वकल्याण पंथ का
विस्तार कर रहे हैं-
जिसके लिये आपका साधुवाद करते हुए
अपने आशीर्वचनों से आप सबको सिक्त करता हूँ
तथा परमात्मा का अवतरण आपमें हो
इस शुभेच्छा से आप सबका अभिनंदन करता हूँ।
आप सब बीज हैं परमात्मा के
अनन्त संभावनाऐं आपमें छिपी हुई हैं।

मनुष्य बीज है संभावनाओं का
और अनन्त संभावनायें उसमें छिपी हुई हैं-
जिनका सम्यक् विकास हुआ तो
आप परमात्मा बन सकते हैं।
आप यदि अपनी संभावनाओं को पूर्ण विकसित कर सकें
तो परमात्मा बन जाना आपकी संभावना का चरम है।
आपकी पूर्णता का चरम विकास है परमात्मा बन जाने में
एक छोटे से वट बीज का पूर्ण विकास है विशाल वट वृक्ष।
यदि थोड़ी भी कमी रह जाए तो बीज वट वृक्ष न बने
थोड़ी भी अपूर्णता वटवृक्ष के रूप में संभावित नहीं हो सकती
संभावना तो थी परमात्मा बन जाने की
और यदि आप न बन सके परमात्मा
तो आप अपूर्ण रह गये, पूर्ण नहीं हुए
विकास का चरम प्रकट नहीं हो सका।
मनुष्यता का, मनुष्यत्व का चरम विकास है परमात्मा-
यदि थोड़ी भी कमी रह जाती है तो
जिसकी संभावना आपमें है, वह पूरा नहीं हो सकता
परमात्मा के फूल खिले नहीं और आप मिट गये
जो संभव था, वह पूरा हुआ; आप बीज भी न रहे
बीज बिना वृक्ष बने मिट गया।
परमात्मा के फूल खिले नहीं; उसकी सुरभि
दिग्दिगन्त को सुवासित नहीं कर सकी तो
आपका जन्म व्यर्थ गया, परमात्मा की आकांक्षा अपूर्ण रही
बिना फूले-फले वृक्ष भी हुए तो भी बीज की तो संभावना थी
जो प्रभु की आकांक्षा थी, अभीप्सा थी वह पूरी न हुई।
बीज से वृक्ष बनने की यात्रा अज्ञात पर निकलने की
साहस तथा जोखिम भरी यात्रा है-

जिसका पता नहीं है उसे पा लेने की तीव्र चाह है
यदि बीज इस अज्ञात की यात्रा पर निकलते नहीं–
साहस और जोखिम का सामना करने से डर जाये
तो कभी अंकुरित न हो और अंकुरण की व्यथा जो झेल न सके–
अपने को मिट्टी में मिला न दे वह बीज सड़ जायेगा
वृक्ष नहीं बन पायेगा।
उसी प्रकार परमात्मा हमारे लिये अज्ञात है
उसकी खोज की यात्रा पर निकलना होगा
धर्म की यात्रा पर निकलना होगा उस
अनजाने को, उस अज्ञात को ज्ञात करने के लिये–
तो धर्म की यात्रा है परमात्मा की खोज में अज्ञात की यात्रा
हमें संसार का पता होता है, किन्तु हमारी अभीप्सा
परमात्मा की जानने की है, अज्ञात को पाने की है
परमात्मा की खोज में जो यात्रा होती है वह धर्म की यात्रा है
और अनेकश: विपदाओं को झेलना पड़ता है–
क्योंकि जिस अनजाने पथ से गुजरना होगा
उसका कुछ भी पता नहीं है
संसार को खोजना नहीं है–
आप उसमें रहने को अभ्यस्त हैं, क्योंकि आप के चारों ओर
आपके बाहर चारों ओर संसार का ही विस्तार है
जिसे आप जानते हैं और मानते हैं
किन्तु आपको अज्ञात को खोजने के लिये
अन्तर्यात्रा करनी होगी क्योंकि उसका कुछ भी पता नहीं है
खुली आँखों से चारों तरफ
सांसारिक विस्तार को देखा जा सकता है–
किन्तु अन्तर्यात्रा के लिए आँखें बंद करनी होगी
आँखे बन्द करनी होंगी अन्तर्यात्रा के लिए
क्योंकि जिस अज्ञात की, जिस परमात्मा को पाने की
अभीप्सा, आकांक्षा आपकी है वह अन्तर्मन में है
और आँखें बंद करने पर ही उसकी झलक
मिलनी भी शुरू हो जाती है।
वह जो तुम्हारे अन्तर्मन में विराजमान है
उसकी खोज पर निकलो, वह जो अज्ञात है
उसे पुकारो, उसको इतनी एकाग्रता से खोजो,
इतने गहन बोध से खोजो कि
तुम्हारी आकांक्षा की ऊर्जा, तुम्हारी अभीप्साका एक–एक कण
उसके पाने की, उसके पुकारने में रित जाए।
इतनी उद्दाम आकांक्षा में जियो कि
संसार में जीने की आकांक्षा भी उसे पाने की आकांक्षा बन जाए
इसके सिवा कोई विचार नहीं, कोई अभीप्सा नहीं–
अज्ञेय शिखरों को लांघ जाने का उद्दाम साहस संजोना होगा
अन्य कोई आकांक्षा नहीं, किसी सुविधा, किसी साधन
किसी प्रकार की सुरक्षा की चिन्ता मत करो

इतनी उमंग, इतनी उत्कंठा और इतना आत्मविश्वास
अपने में भर लो कि परमात्मा के पाने के सिवा
कोई अन्य प्रयोजन न रहे–
अन्यथा यात्रा अधूरी रह जाएगी
बीज सड़ जाएगा, जो संभावना तुम्हारे होने की थी
वह असंभव हो जाएगी।
रीते आये थे, रीते रह गए की कसक बनी रह जाएगी।
धर्म की यात्रा में सत्य–पथ पर चलने का अदम्य साहस होना चाहिए
जिसने यात्रा छोड़ी, सत्यपथ से पृथक हुआ
वह आदमी भी नहीं रह जाता
वह नाम मात्र का आदमी रह जाता है–
जो संसार में भी अधूरा जिया और
अज्ञात तो अज्ञात ही रह जाता है।
उसके भीतर आग नहीं, बुझी राख है
धार्मिक व्यक्ति प्रज्वलित हो उठता है
उसके भीतर आग है
जो हर क्षण, प्रतिपल प्रज्वलित, सघन होती चली जाती है–
एक ऐसा उन्माद, एक ऐसी ऊर्जा से दीप्त होता है
धर्म–पथ का यात्री कि उसे कोई झंझावात मिटा नहीं सकती
वह अस्तित्व के सारे स्वाद अपने प्राणों में उतार लेना चाहता है
वह अंकुरित होता है आसमान छूने की अभीप्सा लेकर
वह पृथ्वी के बाहर ही रूक नहीं जाता
वह पूरे आसमान में पसर जाना चहता है।
अगर आकाश से अपरिचित रहे
तो तुम्हारा पृथ्वी पर रहना भी व्यर्थ है
तुम्हार अस्तित्व कोल्हू के बैल की तरह
जन्म–जन्मांतर तक वर्तुलाकार चक्कर लगाते रहोगे
धर्म की यात्र सत्यपथ, सत्पथ से होती है
अज्ञात की यात्रा ही तुम्हें उस पथ पर खड़ा करेगी
वही तुम्हें उसके निकट लाएगी
जो शाश्वत है, जीवन का सत्य है।
जीवन निर्माण होगा, आनंद और उमंग से झूमता हुआ
अटके रह जाओगे पृथ्वी पर संसार में
तो जीवन दो कौड़ी का भी नहीं रह जाएगा।
अपनी सारी सहजता, सरलता और निश्छलता खो दोगे
बस सांसारिक जीव की तरह बोझिल, उबाऊ और उमसभरी
जिन्दगी ढोने के लिए विवश होकर मर जाओगे
मिट्टी से उठे भी नहीं कि मिट्टी में मिल गए।
देखो अपने आस–पास के लोगों को
कैसी जिन्दगी जी रहे हैं, बोझ ढ़ो रहे हैं,
जीवन भार हो गया है।
न आंखों में चमक है और न जीवन में कोई गति
न कोई आनंद और न ही कोई उमंग

जीना मजबूरी है, बस, जी रहे हैं
क्योंकि मौत अभी आई नहीं है।
पृथ्वी में तुम जमाओ अपनी जड़ें
मगर उठाओ अपनी शाखाओं को आसमान में ऊँचा उठता है
जो जान लिया गया उसमें रहो
लेकिन खोजते रहो अनजान में ऊँचा उठता है
जो जान लिया गया उसमें रहो
लेकिन खोजते रहो, अनजान को, परमात्मा को
तब तुम एक ही साथ गृहस्थ भी और संन्यासी भी–
और जीने का आनंद तभी है।
जब संसार में तृप्त रहो और प्रभु की चाह लिए उसे खोजो
दोनों का मिलन अपूर्व मिलन है
गृहस्थ है पृथ्वी और संन्यस्त होना, संन्यासी होता है आकाश
इस अपूर्व मिलन से अपने जीवन को निखार लो
तुम क्षितिज बन जाओ पृथ्वी आकाश का मिलन बिन्दु
लेकिन आकाश को भूल गए और बस पृथ्वी को पकड़ लिया
जीवन के चरम विकास से चूक गए।
देह–धर्मा, मिट्टी का मिटी, मृण्मय ही मृण्मय बने रहे
आकाश का पता ही नहीं चला, चिन्मय मिला ही नहीं
उस प्रखर गुहा में उतरे ही नहीं–
उस अगम कूप का पता ही नहीं चला–
जहां शून्य ही शून्य, बस शून्य पसरा हुआ है
जहां जल रहा है बिन बाती का दीया
बिना तेल और बिना बाती की दीप–शिखा
ज्योतिर्मयी जहां ज्योति ही ज्योति।
वहां धुआं नही, न कालिख।
तपश्चर्या से अपने को चिन्मय बना लो
तपश्चर्या की दीप–शिखा बन जाओ निर्धूम।
मृण्मय थे। चिन्मय से अटूट संबंध जोड़ लो
अंधकार में अंकुरित हुए, प्रकाश में फैल जाओ
अंधेरे–अंधेरे में रहोगे तो आंखें अंधी हो जाऐंगी
आंखों की चमक बनी रहने दो
प्रेम के प्रकाश में आओ,
ज्योतिर्मय बन जाओ, तभी जीवन सार्थक है।
ठीक भूमि खोजी नहीं, कंकड़–पत्थर बनकर रह गए।
मृत, मरा हुआ, सड़ा हुआ जीवन जीना, वृक्ष न बनोगे
जीवन के स्वर न निकलेंगे
अंकुरण से ही बनोगे द्विज अन्यथा शूद्र ही मरोगे
मनु ने बड़ा ही ठीक कहा कि द्विज बनकर प्रात्रता ग्रहण करते
तुम्हारा जन्म एक दैहिक कृत्य, वासनाजन्य
फिर स्वयं से स्वयं को जन्म देना पड़ता है
अप्तजन, सद्गुरु तथा सद्ग्रंथ तुम्हारे सहयोगी हो सकते हैं
किन्तु स्वयं से स्वयं को जन्म तुम्ही दे सकते हो

पात्रता स्वयं अर्जित करनी पड़ती है, किसी अन्य के भरोसे नहीं,
जीवन की दौड़ में भी उलझे रह गए
कभी धन की दौड़ में, कभी प्रतीष्ठ की दौड़ में
अनगिन दौड़ में अनगिनत बार प्रतियोगी बने तुम
छल–प्रपंच, माया–मोह के पाश में जकड़े रहे, पाप करते रहे
किन्तु मिला क्या ?
सिवा निराशा के, विवशता के
जिसे तुमने जीवन जाना, जिसे जिया
एक दिन सब व्यर्थ हो जाता है, सब छूट जाता है
सिवा आंसू बहाने के कोई उपाय नहीं रह जाता
जो जीवन जीया वह व्यर्थ जीया ...वह जीवन था ही नहीं
बस मृत्यु की ओर निस्सारता की ओर व्यर्थ की भाग–दौड़
जीने वालों की संगति में बैठो
जागे हुओं से पूछो,
जिन्होंने पा लिया और भागदौड़ से बाहर हो गए
उन आप्तजनों से पूछो, वे कहेंगे
जो बाहर के प्रति मरा और भीतर के प्रति जगा
वही जीया !
जो परिधि पर नहीं जीया, वर्त्तुल में चक्कर नहीं लगाता रहा
जो वर्त्तुल से केन्द्र में खिसक गया वही जिया
उसे ही शाश्वत् जीवन का आनंद उपलब्ध हुआ
जिसने न कुछ पकड़ा, न छोड़ा
न ही कोई आसक्ति, निर्मित की, न कोई आग्रह, न कोई बन्धन
वह अस्पर्शित जीता है
'ज्यों की त्यों धर दीन्ही चदरिया'।
यह तुम्हारी संभावना है, इसे पूरा करो
मंदिर–मस्जिद में जाने–न जाने से
धर्म का कोई प्रयोजन नहीं
मंत्र–स्तोत्र रटने से आप धार्मिक नहीं बन जाते
धार्मिक होने के लिये र्सि अपनी संभावना खोजें।
सहज समाधि, शून्यावस्था की प्रतीती
समाधि का न तो आदि है, न अंत और न मध्य ही
वहां न जन्म है और न मृत्यु
वह अलौकिक महासुख है
वहां न अन्य का भान रहता है और न अपना ही
यही महासुख की प्राप्ति तुम्हारी संभावना है
सच्चिदानंद का महासुख तुम्हारी विश्रान्ति है
तब तक रुकना मत जब तक समाधि का रसास्वादन न कर लो
जीवन को दांव पर लगा देना; समाधि में जब तक पहुंचना नहीं
तब तक प्राणों में उसकी पुकार,
उसकी अन्यतम अभीप्सा जगाए रखना।
समाधि के जाने बिना जो गया, उसका आना–जाना व्यर्थ हो गया।
समस्याओं में जिएगा जो, समाधि को नहीं जानेगा।

समाधि के पश्चात् कोई समस्या नहीं--
क्योंकि समाधि है- परम समाधान।
सहज योग : साक्षी भाव : मात्र दृष्टा बनकर रहना ही
एक मात्र साधन है समाधि में जाने का
सब कुछ साक्षी के सामने से गुजरता है
बस वह उसका द्रष्टाभर है
उनके प्रति वह आसक्त नहीं होता, कोई आग्रह नहीं पालता
अन्यथा वह साक्षी न रह पाएगा, पात्र बन जाएगा
आपके संस्कार, आपके विचार, आपका मन
ये सब आपके साक्षी के सामने से गुजरते रहेंगे
मगर इनसे अनासक्त, निरपेक्ष रहना होगा
इन्हें आप देखते ही नहीं,
इनके साथ अपना राग-रंग बना लेते हैं--
आसक्ति निर्मित कर ली कि चूके; ध्यान रखना है।
सहज का अर्थ है जो साथ जन्मा
इसे अपने भीतर खोजना है
भीतर ही भीतर अन्वेषण करना है
दिन-रात बहुत-सी चीजें गुजरती हैं
सुख-दु:ख, संयोग-वियोग आते और चले जाते हैं
तुम आतिथेय हो और वे अतिथि हैं
सब आते हैं और चले जाते हैं
मगर आप कहीं आते-जाते नहीं, बचे रहते हैं
बस उनमें आसक्त मत होना,
चित्त वृत्तियों से संबंध स्थापित मत करना--
तादात्म्य जोड़ा कि भ्रांति हुई।
बस चित्त की भावदशाओं से तादात्म्य का टूट जाना ही है
साक्षी भाव और तभी समाधि की अनुभूति संभव है।
जीवन में क्रान्ति घटनी प्रारंभ हो जाती है साक्षी भाव से
जिसके भीतर सहज का प्रकाश हो जाए
शून्य के अनुभव में उतर जाये
उसके सारे कर्म अकर्म हो जाते हैं
वह सब करते हुए भी कर्त्तापन से मुक्त हो जाता है
मैं कर्त्ता हूं यह स्वप्न का भाव है
मैं साक्षी हूं यह जागरण की अवस्था है।

परमात्मा का प्रेम विराट है और
इसी विराट प्रेम के कारण वह तटस्थ मालूम पड़ता है
इस विराट प्रेम में परमात्म स्वरूप आत्मज्ञानी पुरुष भी
तटस्थ मालूम पड़ते हैं
साक्षी-भाव के गहन बोध में
चित्त इतना प्रेममय हो जाता है कि
आपके कृत्य में वह बाधा नहीं बनता
परमात्मा के विराट प्रेम के कारण ही मनुष्य की स्वतंत्रा है
अन्यथा उसके अस्तित्व का कोई अर्थ ही नहीं होता
जो संभावना है मनुष्य की
उसे प्राप्त करने की उसे स्वतंत्रा भी है।
परमात्मा तटस्थ मालूम होता है
कि मनुष्य की संभावना का चरम विकास हो सके
अन्यथा बूंद सागर न होती
मनुष्य परमात्मा न हो पाता
आपके भीतर जो अमृत है वह प्रकट नहीं होता
देहधर्मा मनुष्य चिन्मय परमात्मा नहीं हो पाता
प्रभु का परम प्रेम ही उसे अपने में निमज्जित कर
परमात्मा बना लेता है, वह वही हो जाता है।
इसी भावदशा में आपको जीना चाहिए
जैसे ही चित्त विचारों के तरंग से रहित हो जाता है
कुछ कृत्य शेष नहीं रह जाता है और न कोई विचारणा
जीवन शाश्वत है, इसे पहचानना है--
सदा है - शरीर के अंदर भी बाहर भी
ध्यान साक्षी भाव है, कोई कृत्य नहीं
ध्यान एक अंतरावस्था है, जहां चित्त विश्रांत होता है
ध्यान बोध है-
एक जाग्रत अवस्था
आप इसी भाव को, इसी अवस्था को
और इसी बोध के साथ--
आपनी संभावनाओं के चरम विकास को प्राप्त हों।
इन्हीं आशीर्वचनों के साथ इतना ही।

अवधूत कृपानन्दनाथ
मार्ग गुरु
शिवा-शिव समूह
10.2.2000

अकिंचैव परापूजा, मौनमेव परोजपः

अनामा प्रकाशन